

आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज ससंघ के सान्निध्य में एवं आर्थिकाश्री विजिज्ञासाश्री माताजी के मार्गदर्शन में राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी
दिनांक 24 से 25 नवम्बर 2025, श्री 1008 आदिनाथ दि. जैन मंदिर मंगलधाम तिलकगंज सागर

सामायिक देशना के संदर्भ में कर्म और कर्मफल

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़, सागर
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
(महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन)
(संयुक्त मंत्री, अ.भा.दि. जैन शास्त्रपरिषद्)

आचार्यश्री विशुद्धसागर जी महाराज सामायिक देशना में कहते हैं - काम बनते ही व्यक्ति कहता है कि मैंने ऐसा किया था सो हो गया। सीधा-सादा और सस्ता-सा कोई है, तो उसका नाम है भगवान्। काम बन गया तो - मैं नहीं होता तो ऐसा हो ही नहीं सकता था। बिगड़ गया तो मैं क्या करूँ? भगवान् की मर्जी। हे भगवन्! यह जगत की लीला तो देखो। जितने दोष हैं, वो सब भगवान् के लिए और जितने गुण हैं, वो सब अपने लिए।

यहां इस लेख में हम कर्म और उसके कर्मफल के विषय में समझेंगे। यह भी समझेंगे की कर्मफल की विविध अवधारणाएं कैसी है? जैसा कि उपरोक्त कथन में आचार्यश्री ने कहा है। आज का संसार ऐसा ही हो गया है। भले ही वह जैनदर्शन के सिद्धान्तों को स्वीकार करने वाला और मानने वाला हो, वह भी सम्पूर्ण दोष भगवान् के और सम्पूर्ण गुण स्वयं के हैं। जबकि गुण-दोष दोनों स्वयं के हैं। जैसा कि संस्कृत व्याकरण के श्रेष्ठ वैयाकरण आचार्य पाणिनि ने कहा है -

स्वतंत्रः कर्ता।

कर्ता स्वतंत्र होता है। अर्थात् कर्ता कर्म करने के लिए स्वतंत्र है। वैसे ही कर्म का फल भोगने के लिए भी कर्ता स्वतंत्र है। प्रत्येक जीव कर्म करता है और उसका फल स्वयं ही भोगता है। यह कदापि संभव नहीं है कि कर्म कोई करे और फल किसी अन्य का प्राप्त हो। कर्म जगत् का सृष्टा है -

विधिः स्रष्टा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम् ।

ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेयाः कर्मवेधसः॥३७॥¹

विधि, स्रष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म और ईश्वर से सब कर्मरूपी ईश्वर के पर्याय वाचक शब्द हैं। अर्थात् इनके सिवाय अन्य कोई लोक का बनाने वाला नहीं। इस श्लोक से यही सिद्ध होता है कि कर्म ही ईश्वर है और इस कर्मरूपी ईश्वर से ही इस लोक का निर्माण हुआ है। कर्मसिद्धान्त सभी जीवों के लिए समान है। इसी विषय पर जैनाचार्य श्री अमितगति महाराज कहते हैं -

¹ पद्मपुराण - 4.37

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ भावना द्वात्रिंशतिका/30

अपने द्वारा पहिले जो कर्म स्वयं किए गए हैं उनका ही शुभ और अशुभ फल स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। यदि दूसरे के द्वारा दिया गया सुख-दुःख प्राप्त होता है तब स्वयं के किए गए कर्म निरर्थक हो जायेंगे। भगवद् गीता का अति प्रसिद्ध उल्लेख यह अंकित करना आवश्यक है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ भगवद् गीता 2.47

आपका अधिकार केवल कर्म करने में है, फल की चिंता करने में नहीं। इसलिए, आप कर्मफल की इच्छा से प्रेरित होकर कार्य न करें और अकर्मण्यता (कर्म न करने) में भी आसक्त न हों। कर्म की प्रधानता को बाल्मीकि रामायण में भी उद्धृत किया है -

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते। वाल्मीकि रामायण

जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल मिलता है।

अचोद्यमानानि यथा, पुष्पाणि फलानि च।

स्वं कालं नातिवर्तन्ते, तथा कर्म पुरा कृतम्।

जैसे फूल और फल किसी को बुलाए बिना स्वतः सही समय पर खिलते हैं, उसी प्रकार पूर्व में किए गए कर्म भी अपना फल अवश्य देते हैं, भले ही समय लगे।

सर्वे कर्मवशा वयम्।

सब कुछ कर्म के वश में है।

न श्वः श्वमुपासीत। को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।

कर्म के भरोसे बिल्कुल मत बैठो। कर्मों को करो, मनुष्य का कल किसे ज्ञात है ?

उपरोक्त कथनों के आधार से यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक जीव को कर्म करना और उसका फल प्राप्त करना स्वयं में ही अभीसिप्त है। यहाँ हम कर्म और कर्म फल के संदर्भ में चर्चा कर रहे हैं। आचार्यश्री अमितगति महाराज द्वारा भावना द्वात्रिंशतिका का प्रणयन किया गया। इस ग्रन्थ पर आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज द्वारा उपदिष्ट-देशना सामायिक देशना है। जिसमें अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इस ग्रन्थ के संदर्भ में यहाँ कर्म और कर्मफल की चर्चा कर रहे हैं।

- **कर्म की शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ** – कर्म शब्द नपुंसकलिंग में है। इसकी व्युत्पत्ति है – कृ धातु से मनिन् प्रत्यय होने पर होती है, जिसकी व्युत्पत्ति है – यत्क्रियते तत् कर्म। कर्तुः क्रियया यद्व्याप्ते तद् वा क्रियाव्याप्यं कर्मेति केचित्। ‘कर्म’ शब्द के अनेक अर्थ हैं। यहाँ तीन विवक्षित अर्थ को लिख रहे हैं –

1. कर्म कारक।
2. क्रिया तथा
3. जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल स्कंध।

कर्म कारक जगत् प्रसिद्ध है, क्रियाएँ समवदान व अधःकर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं। परंतु तीसरे प्रकार का कर्म अप्रसिद्ध है। केवल जैन सिद्धांत ही उसका विशेष प्रकार से निरूपण करता है। वास्तव में कर्म का मौलिक अर्थ तो क्रिया ही है। जीव मन-वचन-काय के द्वारा कुछ न कुछ करता है। वह सब उसकी क्रिया या कर्म है और मन, वचन व काय ये तीन उसके द्वार हैं। इसे जीव कर्म या भाव कर्म कहते हैं।

यहाँ तक तो सबको स्वीकार है। परंतु इस भाव कर्म से प्रभावित होकर कुछ सूक्ष्म जड़ पुद्गल स्कंध जीव के प्रदेशों में प्रवेश पाते हैं और उसके साथ बँधते हैं यह बात केवल जैनागम ही बताता है। ये सूक्ष्म स्कंध अजीव कर्म या द्रव्य कर्म कहलाते हैं और रूप रसादि धारक मूर्तिक होते हैं। जैसे-जैसे कर्म जीव करता है वैसे ही स्वभाव को लेकर ये द्रव्य कर्म उसके साथ बँधते हैं और कुछ काल पश्चात् परिपक्व दशा को प्राप्त होकर उदय में आते हैं। उस समय इनके प्रभाव से जीव के ज्ञानादि गुण तिरोभूत हो जाते हैं। यही उनका फलदान कहा जाता है। सूक्ष्मता के कारण वे दृष्ट नहीं हैं।

➤ **कर्म सामान्य का लक्षण** - जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल स्कंध कर्म है। इसकी अवधारणा जैन दर्शन ने स्पष्ट रूप से कही है। द्रव्य कर्म और भाव कर्म की व्यवस्था भी कही है। कर्म करने और उसके फल को भोगने के लिए कर्ता स्वतंत्र है। यहाँ कर्म के विवक्षित अर्थ और लक्षण को विविध आचार्यों और उनके ग्रन्थों के आधार पर समझते हैं। चूंकि सभी आचार्यों ने कर्म का लक्षण भिन्न ढंग से प्रस्तुत किया है परंतु भावार्थ सभी का एक ही है।

1. द्रव्य के आश्रय रहने वाला तथा अपने में अन्य गुण न रखने वाला बिना किसी दूसरे की अपेक्षा के संयोग और विभागों में कारण होने वाला कर्म है। गुण व कर्म में यह भेद है कि गुण तो संयोग विभाग का कारण नहीं है और कर्म उनका कारण है।²
2. आत्मा के संयोग और प्रयत्न से हाथ में कर्म होता है।¹ ³ नोट—जैन वांगमय में यही लक्षण पर्याय व क्रिया के हैं। अंतर इतना ही है कि वैशेषिक जन परिणामन रूप भावात्मक पर्याय को कर्म न कहकर केवल परिस्पंदन रूप क्रियात्मक पर्याय को ही कहता है, जबकि जैनदर्शन दोनों प्रकार की पर्यायों को।

² एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ।17। वैशेषिक दर्शन/1-1/17/31

³ आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ।1। वैशेषिक दर्शन/5-1/1/150

3. कर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं- घटं करोति में कर्मकारक कर्म शब्द का अर्थ है। कुशल अकुशल कर्म में पुण्य-पाप अर्थ है। उत्क्षेपण-अवक्षेपण आदि में कर्म का क्रिया अर्थ विवक्षित है। यहाँ आस्रव के प्रकरण में क्रिया अर्थ विवक्षित है अन्य नहीं (क्योंकि वही जड़ कर्मों के प्रवेश का द्वार है)।⁴
4. कर्म शब्द कर्ता, कर्म और भाव - तीनों साधनों में निष्पन्न होता है और विवक्षानुसार तीनों यहाँ (कर्मास्रव के प्रकरण में) परिगृहीत हैं।⁵
5. वीर्यातराय और ज्ञानावरण के क्षयोपशम की अपेक्षा रखनेवाले आत्मा के द्वारा निश्चय नय से आत्म-परिणाम और पुद्गल के द्वारा पुद्गल-परिणाम; तथा व्यवहारनय से आत्मा के द्वारा पुद्गल-परिणाम और पुद्गल के द्वारा आत्म-परिणाम भी जो किये जायें वह कर्म हैं।⁶
6. कारणभूत परिणामों की प्रशंसा की विवक्षा में कर्तृधर्म आरोप करने पर वही परिणाम स्वयं द्रव्य और भावरूप कुशल-अकुशल कर्मों को करता है अतः वही कर्म है।⁷
7. आत्मा की प्रधानता में वह कर्ता होता है और परिणाम करण तब जिनके द्वारा किया जाये वह कर्म यह विग्रह भी होता है।⁸
8. साध्यसाधन भाव की विवक्षा न होने पर स्वरूपमात्र कथन करने से कृति को भी कर्म कहते हैं।⁹
9. जो जीव को परतंत्र करते हैं अथवा जीव जिनके द्वारा परतंत्र किया जाता है उन्हें कर्म कहते हैं।¹⁰
10. जीव के द्वारा मिथ्यादर्शनादि परिणामों से जो किये जाते हैं या उपार्जित होते हैं - वे कर्म हैं।¹¹
11. आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी आप्तमीमांसा में कहते हैं -

⁴ कर्मशब्दोऽनेकार्थः--क्वचित्कर्तुरीप्सिततमे वर्तते--यथा घटं करोतीति। क्वचित्पुण्यापुण्यवचनः--यथा “कुशलाकुशलं कर्म” [आप्त मीमांसा 8] इति। क्वचिच्च क्रियावचनः--यथा उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुन्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि [वैशेषिक दर्शन/1/1/7] इति। तत्रेह क्रियावाचिनो ग्रहणम्। राजवार्तिक/6/1/3/504/11

⁵ कर्मशब्दस्य कर्त्रादिषु साधनेषु संभवत्सु इच्छातो विशेषोऽध्यवसेयः। वीर्यातरायज्ञानावरणक्षयक्षयोपशमापेक्षेण आत्मनात्मपरिणामः पुद्गलेन च स्वपरिणामः व्यत्ययेन च निश्चयव्यवहारनयापेक्षया क्रियत इति कर्म। करणप्रशंसा विवक्षायां कर्तृधर्माध्यारोपे सति स परिणामः कुशलमकुशलं वा द्रव्यभावरूपं करोतीति कर्म। आत्मनः प्राधान्यविवक्षायां कर्तृत्वे सति परिणामस्य करणत्वोपपत्तेः बहुलापेक्षया क्रियतेऽनेन कर्मैत्यपि भवति। साध्यसाधन भावानभिधित्सायां स्वरूपावस्थिततत्त्वकथनात् कृतिः कर्मैत्यपि भवति। एवं शेषकारकोपपत्तिश्च योज्या। राजवार्तिक/6/1/7/504/26

⁶ वही

⁷ वही

⁸ वही

⁹ वही

¹⁰ जीवं परतंत्रीकुर्वति, स परतंत्री क्रियते वा यस्तानि कर्माणि, जीवेन वा मिथ्यादर्शनादिपरिणामैः क्रियन्ते इति कर्माणि। आप्त परीक्षा/टीका/113/296

¹¹ (भगवती आराधना / विजयोदया टीका/20/71/8) केवल लक्षण नं. 2।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।

तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो, जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः॥¹²

यह काम, क्रोध आदि से होने वाला संसार विचित्र रूप है। वह संसार अपने-अपने कर्मों के अनुकूल ही होता है और वह कर्म भी अपने-अपने रागादि परिणाम के निमित्त से होता है, जिनको कर्मबंध होता है, वे जीव भी शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के हैं।

➤ **कर्म के प्रकार** – कर्म दो प्रकार के हैं¹³ –

1. द्रव्य कर्म

2. भाव कर्म

द्रव्य कर्म दो प्रकार का है¹⁴ –

1. कर्म वर्गणा रूप

2. नोकर्म वर्गणा रूप

➤ **द्रव्य कर्म** – सब शरीरों की उत्पत्ति के मूलकारण कार्मण शरीर को **कर्म (द्रव्यकर्म)** कहते हैं।¹⁵

जीव के जो **द्रव्यकर्म** हैं वे पौद्गलिक हैं और उनके अनेक भेद हैं। तथा जो **भावकर्म** हैं वे आत्मा के चैतन्य परिणामात्मक हैं, क्योंकि आत्मा से कथंचित् अभिन्न रूप से स्ववेद्य प्रतीत होते हैं और वे क्रोधादि रूप हैं।¹⁶

उनमें से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मस्कंधों के भेद कर्म वर्गणा (**द्रव्य कर्मवर्गणा**) है।¹⁷

➤ **नोकर्म** – (कार्मण वर्गणा को छोड़कर) शेष उन्नीस प्रकार की वर्गणाएँ नोकर्म वर्गणाएँ हैं।

(अर्थात् कुल 23 प्रकार की वर्गणाओं में से कार्मण, भाषा, मनो व तैजस इन चार को छोड़कर शेष 19 वर्गणाएँ नोकर्म वर्गणाएँ हैं)।¹⁸ औदारिक, वैक्रियक, आहारक और तैजस नामकर्म के

¹² आप्तमीमांसा/99

¹³ कर्माणि द्विविधान्यत्र द्रव्यभावविकल्पतः। आप्त परीक्षा/मूल /113

¹⁴ द्रव्यवर्गणा दुविधा—कर्म-वर्गणा, णोकर्मवर्गणा चेति। धवला 14/5,6,71/52/5

¹⁵ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मण शरीरं कर्मेत्युच्यते। सर्वार्थसिद्धि/2/25/182/8

(राजवार्तिक/2/25/3/137/6), (राजवार्तिक/5/24/9/488/20)।

¹⁶ द्रव्यकर्माणि जीवस्य पुद्गलात्मान्यनेकधा। 113।

भावकर्माणि चैतन्यविवर्त्तात्मनि भांति नुः।

क्रोधादीनि स्ववेद्यानि कथंचिदभेदतः। 114। आप्तपरीक्षा/ मूलाचार/113-114, (पंचाध्यायी / उत्तरार्ध/1058/1060)

¹⁷ तत्त्व कर्मवर्गणा णाम अट्टकर्मवर्गणवियप्ता। धवला 14/5,6,71/52/5

(नियमसार / तात्पर्यवृत्ति/107)

¹⁸ सेस एक्कोणवीसवर्गणाओ णोकर्मवर्गणाओ। धवला 14/5,6,71/52/6

उदय से चार प्रकार के शरीर होते हैं। वे नोकर्म शरीर हैं। पाँचवाँ जो कार्मण शरीर सो कर्म रूप ही है।¹⁹ औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर- वे नोकर्म हैं।²⁰

➤ नो शब्द का दोय अर्थ है- एक तौ निषेधरूप और एक ईषत् अर्थात् स्तोक रूप। सो इहाँ कार्मण की ज्यों ये चार शरीर आत्मा के गुणों का घातै नहीं वा गत्यादिक रूप पराधीन न करि सकैं तातैं कर्मतै विपरीत लक्षण धरनेकरि इनिकौ अकर्मशरीर कहिए। अथवा कर्मशरीर के ए सहकारी हैं तातैं ईषत् कर्मशरीर कहिए। ऐसै इनिको नोकर्म शरीर कहैं जैसे मन को नोइंद्रिय कहिए है।²¹

➤ कर्म व नोकर्म में अंतर - प्रश्न-कर्म और नोकर्म में क्या विशेष है? उत्तर-आत्मा के योग परिणामों के द्वारा जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। यह आत्मा को परतंत्र बनाने का मूलकारण है। कर्म के उदय से होने वाला वह औदारिक शरीर आदिरूप पुद्गल परिणाम जो आत्मा के सुख-दुःख में सहायक होता है; नोकर्म कहलाता है। स्थिति के भेद से भी कर्म और नोकर्म में भेद है।²²

➤ भावकर्म - कर्म सामान्यभावरूप कर्मत्व करि एक प्रकार का है। बहुरि सोई कर्म द्रव्य और भाव से दोय प्रकार है। तहाँ ज्ञानावरणादि पुद्गलद्रव्य का पिंड सो द्रव्यकर्म है, बहुरि तिस पिंड विषै फल देने की शक्ति है सो भावकर्म है। अथवा कार्य विषै कारण के उपचारतै तिस शक्तितै उत्पन्न भए अज्ञानादिक व क्रोधादिक, सो भी भावकर्म कहिए।²³

भावकर्म दो प्रकार का होता है-जीवगत व पुद्गलगत। भाव क्रोधादि की व्यक्तिरूप जीवगत भावकर्म है और पुद्गलपिंड की शक्तिरूप पुद्गल द्रव्यगत भावकर्म है। यहाँ दृष्टांत देकर समझाते हैं-जैसे कि मीठे या खट्टे द्रव्य को खाने के समय जीव को जो मीठे खट्टे की व्यक्ति का विकल्प उत्पन्न

¹⁹ ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजणामकम्मदये।

चउणोकम्मसरीरा कम्मवे य होदि कम्मइयं। गोम्मटसार जीवकांड/244/507

²⁰ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि हि नोकर्माणि। नियमसार / तात्पर्यवृत्ति/107

²¹ नोशब्दस्य विपर्यये ईषदर्थे च वृत्तेः। तेषां शरीराणां कर्मवदात्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वाभावेन कर्मविपर्ययत्वात् कर्मसहकारित्वेन ईषत्कर्मत्वाच्च नोकर्मशरीरत्वसंभवात् नोइंद्रियवत्। गोम्मटसार जीवकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका/244/508/2

²² अत्राह-कर्मनोकर्मणः कः प्रतिविशेष इति। उच्यते-आत्मभावेन योगभावलक्षणेन क्रियते इति कर्म। तदात्मनोऽस्वतंत्रीकरणे मूलकारणम्। तदुदयापादितः पुद्गलपरिणाम आत्मनः सुखदुःखबलाधानहेतुः औदारिक शरीरादिः ईषत्कर्म नोकर्मैत्युच्यते। किं च स्थितिभेदाद्धेदः। राजवार्तिक/5/24/9/488/20

²³ कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।

पोगलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु। 6। गोम्मटसार कर्मकांड/6/6

कार्ये कारणोपचारात्तु शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति। गोम्मटसार कर्मकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका/6/6/9

होता है वह जीवगत भाव है; और उस व्यक्ति के कारणभूत मीठे-खट्टे द्रव्य की जो शक्ति है, सो पुद्गलद्रव्यगत भाव है। इस प्रकार जीवगत व पुद्गलगत के भेद से दो प्रकार भावकर्म का स्वरूप भावकर्म का कथन करते समय सर्वत्र जानना चाहिए।²⁴

- **कर्मफल का अर्थ** - जीव के पूर्वकृत जो शुभ या अशुभ कर्म उसकी चित्तभूमि पर अंकित पड़े रहते हैं, वे अपने-अपने समय पर परिपक्व दशा को प्राप्त हो कर जीव को फल देकर खिर जाते हैं। इसे ही कर्मों का उदय कहते हैं। कर्मों का यह उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल व भव की अपेक्षा रखकर आता है। कर्म के उदय में जीव के परिणाम उस कर्म की प्रकृति के अनुसार ही नियम से हो जाते हैं, इसी से कर्मों को जीव का पराभव करने वाला कहा गया है।

तस्य कर्मणो यन्निष्पाद्यं सुखदुःखं तत्कर्मफलम् ।²⁵

उस कर्म से उत्पन्न किया जाने वाला सुख-दुख कर्मफल है।

- **कर्म का उदय** - इस प्रकार कारणवश से प्राप्त हुआ वह अनुभव दो प्रकार से प्रवृत्त होता है -
1. स्वमुख से और 2 परमुख से।²⁶

काल, भव और क्षेत्र का निमित्त पाकर कर्मों का उदय होता है। वह दो प्रकार का है- 1. सविपाक उदय और 2. अविपाक उदय।²⁷

कषाय का उदय छह प्रकार का होता है। वह इस प्रकार है। तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, मंदतम।²⁸

- **द्रव्य कर्मोदय का लक्षण** - धन्य के संग्रह के समान जो पूर्व संचित कर्म हैं, उनके आत्मा में अवस्थित रहने को सत्त्व कहते हैं। कर्मों के फल भोगने के काल को उदय कहते हैं। तथा

²⁴ भावकर्म द्विविधा भवति। जीवगतं पुद्गलकर्मगतं च। तथाहि-भावक्रोधादिव्यक्तिरूपं जीवभावगतं भण्यते। पुद्गलपिंडशक्तिरूपं पुद्गलद्रव्यगतं। तथा चोक्तं—(उपरोक्त गाथा) ॥ अत्र दृष्टान्तो यथा—मधुरकटुकादिद्रव्यस्य भक्षणकाले जीवस्य मधुरकटुकस्वादव्यक्तिविकल्परूपं जीवभावगतं, तद्व्यक्तिकारणभूतं मधुरकटुकद्रव्यगतं शक्तिरूपं पुद्गलद्रव्यगतं। एवं भावकर्मस्वरूपं जीवगतं पुद्गलगतं च द्विधेति भावकर्म व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यम्। समयसार / तात्पर्यवृत्ति/190-192 में प्रक्षेपक गाथाके पश्चात् की टीका

²⁵ प्रवचनसार / तत्त्वप्रदीपिका/124

²⁶ स एवं प्रत्ययवशादुपात्तोऽनुभवो द्विधा वर्तते स्वमुखेन परमुखेन च। सर्वार्थसिद्धि 8/21/398/7 (राजवार्तिक 8/21/1/583/16)

²⁷ काल-भव-खेत्तपेही उदओ सविवाग अविवागो। पंचसंग्रह/प्राकृत 4/5 13 (पंचसंग्रह/संस्कृत 4/368)।

²⁸ तीव्र मंदादिउदयः

षड्विधः कषायोदयः। तद्यथा, तीव्रतमः, तीव्रतरः, तीव्रः, मंदः, मंदतरः, मंदतम इति। धवला 1/1,136/388/3

अपक्व कर्मों के पाचन को उदीरणा कहते हैं।²⁹ द्रव्य, क्षेत्र, काल व भव के निमित्त के वश से कर्मों के फल का प्राप्त होना उदय है।³⁰

कर्मरूप से उदय में आने को कर्मोदय कहते हैं। अपक्वपाचन के बिना यथाकाल जनित स्थितिक्षय से जो कर्मों का विपाक होता है, उसको कर्मोदय कहते हैं। ऐसा इस गाथा के उत्तरार्ध का अर्थ है। सो कैसे? क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल द्रव्य के आश्रय से स्थिति का क्षय होना तथा कर्मस्कंधों का अपना फल देकर झड़ जाना उदय है। ऐसा सूत्र के अवलंबन से जाना जाता है।³¹ अपनी अपनी स्थिति क्षय के वश से उदयरूप निषेकों के गलने पर कर्मस्कंधों की जो फलदान परिणति होती है, उसे उदय कहते हैं।³² अपने अनुभाग रूप स्वभाव को प्रगटता कौ उदय कहिए है। अथवा अपना कार्यकरि कर्मणा को छोड़ै ताको उदय कहिये।³³

➤ भाव कर्मोदय का लक्षण - जीवों के तो जो तत्त्व का अज्ञान है वह अज्ञान का उदय है और जीव के जो अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व का उदय है। और जीवों के अविरमण या अत्यागभाव है वह असंयम का उदय है और जीवों के मलिन उपयोग है वह कषाय का उदय है।³⁴ कर्म के विपाक को उदय कहते हैं।³⁵

➤ स्वमुखोदय व परमुखोदय के लक्षण - उदय को प्राप्ति नहीं जे नपुंसक वेदादि परमुख उदयकरि समान समयनिविषै उदयरूप एक-एक निषेक, कहा अनुक्रमकरि संक्रमणरूप होइ

²⁹ धण्णस्स संगहो वा संतं जं पुव्वसंचियं कम्मं।

भुंजणकालो उदओ उदीरणाऽपक्वपाचणफलं व । 3। पंचसंग्रह/प्राकृत/3/3

³⁰ द्रव्यादिनिमित्तवशात् कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः। सर्वार्थसिद्धि 2/1/149/8

(राजवार्तिक 2/1/4/100/19) (राजवार्तिक 6/14/1/524/29) (प्रवचनसार / तत्त्वप्रदीपिका 56/106/1)

³¹ कम्मेण उदयो कम्मोदयो, अवक्कपाचणाए विणा जहाकालजणिदो कम्माणं ठिदिक्खण जो विवागो सो कम्मोदयोत्ति भण्णदे। सो पुण खेत्त भव काल पोगल द्विदी विवागोदय ति एदस्सगाहाथच्छद्धस्स समुदायत्थो भवदि। कुदो। खेत्त भव काल पोगले अस्सिऊण जो द्विदिवखओ उदिण्णफलक्खंध परिसडणलक्खणो सोदयो ति सुत्तत्थावलंवणादो। कषायपाहुडु/ वेदक अधिकार नं. 6

³² स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कंधानां फलदानपरिणतिः उदयः। गोम्मटसार जीवकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका 8/29/12 (गोम्मटसार कर्मकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका 439/592/8)।

³³ स्वभावाभिव्यक्तिः उदयः, स्वकायं कृत्वा रूपपरित्यागो वा। गोम्मटसार कर्मकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका 264/397/11

³⁴ अण्णाणस्सस उदओ जा जीवाणं अतच्चउवलद्धी।

मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असंद्हाणत्तं । 132।

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं।

जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसायउदओ । 133। समयसार 132-133

³⁵ उदयो विपाकः। सर्वार्थसिद्धि 6/14/332/7

प्रवर्तते ऐसे स्वमुख व परमुख उदय का विशेष जानना। जो प्रकृति आपरूप ही होइ उदय आवै तहाँ स्वमुख उदय है। जो प्रकृति अन्य प्रकृतिरूप होइ (उदय आवै) तहाँ पर-मुख उदय है।³⁶

➤ उदय सामान्य निर्देश -

➤ कर्म कभी बिना फल दिये नहीं झड़ते - कर्म स्वरूप से या पररूप से फल बिना दिये अकर्मभाव को प्राप्त होते नहीं क्योंकि, ऐसा मानने में विरोध आता है। किंतु अनुदयरूप प्रकृतियों के प्रत्येक निषेक एक समय तक स्वरूप से रहकर और दूसरे समय में परप्रकृति रूप से रहकर तीसरे समय में अकर्मभाव को प्राप्त होते हैं, ऐसा नियम है। अतः सूत्र में (सम्यग्मिथ्यात्व के) दो समय काल प्रमाण स्थिति का निर्देश दिया है।³⁷

➤ उदय का अभाव होने पर जीव में शुद्धता आती है - जीव अयोगी कैसे होता है?।³⁸। क्षायिक लब्धि से जीव अयोगी होता है।³⁸

➤ कर्म का उदय द्रव्य क्षेत्र आदि के निमित्त से होता है - क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल द्रव्य का आश्रय लेकर जो स्थिति विपाक होता है उसे उदीरणा कहते हैं और उदय क्षय को उदय कहते हैं।³⁹ काल, भव और क्षेत्र का निमित्त पाकर कर्मों का उदय होता है।⁴⁰

द्रव्यकर्म के उदय से जीव क्रोधरूप होता है, ऐसा जो कथन किया है उस पर शंकाकार कहता

है-

प्रश्न- जब द्रव्यकर्मों का जीव के साथ संबंध पाया जाता है तो वे कषायरूप अपने कार्य को सर्वदा क्यों नहीं उत्पन्न करते हैं?

उत्तर- सभी अवस्थाओं में फल देनेरूप विशिष्ट अवस्था को प्राप्त न होने के कारण द्रव्य कर्म सर्वदा अपने कषाय रूप कार्य को नहीं करते हैं।

प्रश्न- द्रव्यकर्म फल देने रूप विशिष्ट अवस्था को सर्वदा प्राप्त नहीं होते, इसमें क्या कारण है? उसका कथन करना चाहिए।

³⁶ अनुदयगतानां परमुखोदयत्वेन स्वसमयोदया एकैकनिषेकाः स्थितोक्तसंक्रमेण संक्रम्य गच्छंतीति स्वमुखपरमुखोदयविशेषो अवगंतव्यः। गोमटसार कर्मकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका 342/493/10, पृ. 494/10, राजवार्तिक/ हिंदी 8/21/629

³⁷ ण च कम्मं सगरूवेण परसरूवेण वा अदत्तफलमकम्मभावं गच्छदि, विरोहादो। एगसमयं सगसरूवेणच्छिय विदियसमए परपडिसरूवेणच्छिय तदियसमए अकम्मभावं गच्छदि त्ति दुसमयकालट्टिदिणिद्देसो कदो। कषायपाहुइ 3/22/ \$430/245/2 (भगवती आराधना 1850/1661)।

³⁸ अजोगि णाम कथं भवदि। 34। खइयाए लब्धीए। 35। षट्खंडागम 7/2,1/ सूत्र 34-35/78

³⁹। खेत्त भव काल पोगलट्टिदिविवागोदयखयो दु। 59। कषायपाहुइ सूत्र/मूल गाथा 59/465

⁴⁰। कालभवखेत्तपेही उदओ.....। पंचसंग्रह/प्राकृत 4/513, (भगवती आराधना / विजयोदया टीका 1708/1537/8)।

उत्तर- जिस कारण से द्रव्यकर्म सर्वदा विशिष्टपने को प्राप्त नहीं होते वह कारण प्रागभाव है। प्रागभाव का विनाश हुए बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और प्रागभाव का विनाश द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव की अपेक्षा लेकर होता है। इसलिए द्रव्यकर्म सर्वदा अपने कार्य को उत्पन्न नहीं करते हैं, यह सिद्ध होता है।⁴¹

मन में विचारकर जब जीव बाह्यद्रव्य का अर्थात् बाह्य परिग्रह का स्वीकार करता है, तब राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। यदि सहकारी कारण न होगा तो केवल कर्ममात्र से रागद्वेष उत्पन्न होते नहीं। जैसे कि मृत्पिंड से उत्पन्न होते हुए भी दंडादि के अभाव में उत्पन्न नहीं होता है।⁴² द्रव्यक्षेत्रादि की अनुकूलता में स्वमुखेन और प्रतिकूलता में परमुखेन उदय होता है। जिस प्रकृति का उदय नहीं होता उसकी उदय निषेक स्थिति उपांत्य समय में पररूप से संक्रमित हो जाती है।⁴³

➤ **आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज द्वारा उपदिष्ट सामायिक देशना में कर्म और कर्मफल पर विशेष चर्चा –**

- स्वयं के कर्म पर, स्वयं के धर्म पर जिसकी दृष्टि है, वही सम्यग्दृष्टि है।
- ध्यान रखना! पिता के नाम पर, गुरु के नाम पर ज्यादा जीवन नहीं चलता।
- भगवान सबका भला करें यह भी व्यवहार की भाषा है।
- वरदान वही फलित होते हैं जहाँ पुण्य होता है और शाप भी वहीं फलित होता है जहाँ पाप होता है।
- चाहे दुःखी हो, चाहे सुखी हो, वह परकृत नहीं है।
- जैसे सिंह दहाड़ता है वैसा आपका स्याद्वाद नाद होता है।
- न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त-वैरे।
- तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः॥ स्वयंभूस्तोत्र
- हे वीतराग जिनेश्वर! आपकी निंदा की जाए तो आप नाराज नहीं होते हैं। स्तुति की जाए तो प्रसन्न नहीं होते हैं, इसलिए आपकी पूजा करने आता हूँ।

⁴¹ दव्वकम्मस्स उदण्ण जीवो कोहो त्ति जं भणिदं एत्थ चोअओ भणादि, दव्वकम्माइं जीवसंबंधाइं संताइं किमिदि सगकज्जं कसायरूवं सव्वद्धं ण कुणंति? अलद्ध विसिद्धभावत्तादो। तदलंभे कारणं वत्तव्वं। प्रागभावो कारणं। प्रागभावस्स विणासो वि दव्वखेत्तकालभवा वेक्खाए जायदे। तदो ण सव्वद्धं दव्वकम्माइं सगफलं कुणंति त्ति सिद्धं। कषायपाहुइ 1/1,13,14/ \$242/289/1

⁴² बाह्यद्रव्यं मनसा स्वीकृतं रागद्वेषयोर्बीजं तस्मिन्नसति सहकारिकारणे न च कर्ममात्राद्वागद्वेषवृत्तिर्यथा सत्यपि मृत्पिंडे दंडाद्यंतर कारणवैकल्ये न घटोत्पत्तिर्यथेति मन्यते। भगवती आराधना / विजयोदया टीका 1170/1159/4

⁴³ उदयाभावेण उदयणिसेयद्विदी परसरूवेण गदाए। कषायपाहुइ 3/22/ \$430/244/9

- जैन दर्शन में कर्तव्यपना खड़ा मत करना, क्योंकि जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त है कण कण स्वतंत्र है अणु अणु स्वतंत्र है।
- उपशमभाव से युक्त होकर जो जीवन व्यतीत करता है, उसका नाम तपस्वी है।
- जिसको चारों ओर से सताया जा रहा हो, बाण छोड़े जा रहे हों, तब भी चेहरा प्रसन्न दिखे, तो यह बड़ी बात है। इसका तात्पर्य है कि भीतर का भगवान जाग्रत है। सम्यग्दृष्टि जीव पर समता का कवच होता है, इसलिए कितने भी उपसर्ग के बाण गिरें, सब नीचे टपकते हैं।
- प्रतिदिन पूजा करता हूँ मैं, फिर भी संक्लेशता रहती है। भैया! ये पूजा के कारण संक्लेशता नहीं है, यह कषायभाव के कारण संक्लेशता है।
- ज्ञानी! तुम दान-पूजन से दरिद्री नहीं हुए हो, तुम पूर्व में जो दान का खाते थे, सो दरिद्री हुए हो। जिसने निर्माल्य का एक कण भी लिया है वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा का कीड़ा होता है।
- श्री जिनेन्द्र जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, पूजन, तीर्थयात्रा इत्यादि से अर्जित किए गए धन का जो सेवन करता है, वह नियम से नरकगति का सेवन करता है।